शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

धर्मवीर भारती के मिथकीय काव्यों में स्त्री पात्रों का चरित्रांकन

डॉ. रीता तिवारी
अल्मोड़ा
उत्तराखण्ड, भारत

शोध संक्षेप

धर्मवीर भारती ने अपने मिथकीय काव्यों में पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के साथ-साथ विदेशी, मिथक-चरित्रों को भी आधार बनाया है। इनमें भी सर्वाधिक चरित्र महाभारत तथा भागवत से लिए हैं। इन चरित्रों एवं उनके कथानक को आधार बनाकर भारती जी आधुनिक मूल्यों की समीक्षा भी करते हैं, और उस सन्दर्भ में अपने निष्कर्ष भी संकेतित करते हैं। उनके पौराणिक आख्यान में वर्णित चरित्र अधिकांशतः अपने मूल रूप में स्थिर हैं। अर्थात् भावगत और विचारगत दोनों धरातलों पर उनमें एक स्थायित्व पाया जाता है। सृष्टि के प्रारम्भ से चले आ रहे ये वृत्तांत सर्वप्रथम लोक मुख से ही उपजे होंगे। इनके लोक प्रचलित रूप का ही वर्णन हम भारतीय संस्कृति के आदि ग्रंथों, वेद, संहिता, ग्रंथों, उपनिषदों तथा इनके पश्चात् व्यापक रूप में रामायण एवं महाभारत आदि पुराणों में पाते हैं। भारती के मिथकीय काव्यों की भवचेतना तीन स्तरों पर प्रतिफलन प्राप्त करती है; पौराणिक स्तर, युगीन स्तर और मानवीय स्तर । युद्ध के अनुभव का एक स्तर निश्चित रूप से पौराणिक है। उसकी पौराणिक प्रासंगिकता है। वस्तुतः ये मिथक चरित्र अपने पूर्व कथा सन्दर्भों को रखते हुए भी इन रचनाओं में एक नवीन और व्यापक आयाम पाते हैं। आधुनिक रचनाकार ने इन्हीं का आधार लिया है।

प्रस्तावना

सामान्यतः पुराकथा के चरित्र अपने मूल स्वरूप में गुण-दोष सम्पन्न होते हैं। उनकी पुराकथात्मक प्रस्तुति पाप-पुण्य, अच्छा- बुरा, देव-मानव, देव-दानव के रूप में होती रही है और वे किसी भी स्थान पर अपने चरित्र की मूल रेखाओं से इधर-उधर हुए नहीं दिखाई देते। पुराकथा में अधिकांश चरित्रों के कर्म-विधान नियति से संचालित और प्रेरित दिखाये गये हैं। ये चरित्र आद्योपांत एक सी भाव-धारा और वैचारिक धरातल पर रहते हैं। ये प्रायः आद्योपांत उच्च गुण सम्पन्न वीर पराक्रमी रहे हैं या फिर इन गुणों के विपरीत दुष्कर्म में प्रवृत रहते हैं।

भारतीय संस्कृति की चिन्तन परक दृष्टि का उद्देश्य आदर्श की स्थापना करना है। धर्म प्रतिष्ठा और अधर्म का नाश उसकी सबसे बड़ी चिन्ता है। इसलिए सामान्यतः हमारे स्रोत ग्रथों में सारी घटनाएँ और पात्र पाप पुण्य धर्म-अधर्म के धरातल पर धर्म और पुण्य की प्रतिष्ठा करते हैं। इसीलिए इन चरित्रों को स्थिर चरित्र कहा गया है। वे अपने प्राणों पर खेलकर भी अपने प्रण और धर्म का निर्वाह करते हैं। उनमें मानसिक द्वन्द्व की स्थिति सहज स्वाभाविक मानसिक ऊहापोह के रूप में न आकर सत्य और असत्य के संघर्ष में या तो सत्य पक्षधर्मा के रूप में आई है, अथवा असत्य पक्षधर्मा के रूप में । उदाहरण के लिए कर्ण यह जानते हुए भी कि इन्द्र ब्राह्मण वेश में कवच कुण्डल माँग रहे हैं, उन्हें मना न करके कवच -कुण्डल का दान करता है। आधुनिक काव्य में इस तथ्य को परिवर्तित नहीं किया जा सकता, किन्तु उसकी प्रक्रिया में स्थापित अन्तर ही मिथकीय पात्र की यथार्थता

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

और आधुनिक दृष्टि की अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करता है। पुराकथा का प्रत्येक पात्र अपने कर्म में अपनी संलग्नता को परिणाम-निरपेक्ष होकर स्थापित करता है। यही उसकी शक्ति भी है और सीमा भी।

मिथकीय काव्य में स्त्री पात्र

महाभारत का अश्वत्थामा बदले की भावना से प्रेरित होकर पाण्डव शिविर में जाकर सामूहिक हत्या करता है। उसका क्षोभ यह नहीं है कि यह कर्म नैतिक है या अनैतिक। महाभारतकार भी इस द्वन्द्व में नहीं पड़ता है, किन्तु 'अंधायुग' का अश्वत्थामा इस संहार कार्य में प्रवृत्त होने के पूर्ण मानसिक ऊहापोह की प्रक्रिया से भी गुजरता है। यही कवि का मौलिक चिन्तन है। मिथकीय आधार लेकर लिखने वाले किसी भी रचनाकार के लिए एक भावभूमि की प्रेरक बनती है। पूरी तरह से स्थिर धरातल पर संचरित होते हुए भी इन घटनाओं और चरित्रों में असीम मानवीय संवेदनाएँ, आत्मिक संघर्ष और मनावैज्ञानिक द्वन्द्वों के संकेत निहित रहते हैं।

मिथकीय चरित्रों की पुनर्रचना करते समय नये युग का रचनाकार चरित्रों के देवीस्वरूप का परिष्कार करके उन्हें मानवीकृत रूप में उपस्थित करता है। अंधायुग के अश्वत्थामा, गांधारी और युयुत्सु; 'संशय की एक रात' के राम, हनुमान तथा विभीषण; 'एक पुरूष और' के विश्वामित्र और मेनका तथा 'आत्मजयी' के नचिकेता मूलतः इस प्रवृत्ति से प्रतीक पात्र के रूप में आधुनिक बोध से सम्पृक्त चरित्र बन गए हैं।

मिथक के चरित्र आधुनिक परिपेरक्ष्य में युगानुरूप चित्रित होते हुए भी अपने अलौकिकत्व का पूर्ण रूपेण त्याग नहीं कर पाते हैं। यही मिथक-चरित्र की सीमा भी है और शक्ति भी । यदि कवि अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करके बलात् उनके अलौकिकत्व से खिलवाड़ करता है, तो चरित्र की ही हानि नहीं होती; वरन प्रस्तुति भी एक उपहास बन जाती है। उदाहरणार्थ मिथक, योगमाया, त्रिनेत्र, सुदर्शन चक्र, स्वर्ग, नरक, यमराज, देवगण, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अलौकिक स्वरूप में प्रतिष्ठा पाते हैं इनके अभाव में पौराणिक पात्र अधूरे हैं। ऐसी स्थिति में कवि मिथक चरित्रों के इन गुणों कों अक्षुण्ण रखते हुए युग सापेक्ष उपस्थापना करता है; यथा- विघटन, संत्रास, सामाजिक विसंगति, अकेलापन, अलगाव तथा मृत्यु-पीड़ा आदि का समावेश करते हुए मानवीयता के स्तर पर मिथक चरित्र की प्रस्तुति में आलौकिकत्व की रक्षा हो जाती है।

वर्तमान जीवन में व्याप्त असन्तोष वस्तुतः एक द्विस्तरीय प्रक्रिया है। विद्रोह समाज सापेक्ष होता है। इसमें समाज संगठन, सुधार मावनता, अतीत; गौरव तथा निम्न वर्ग के उद्धार के प्रति भाव-दृष्टि आदि संघर्ष के बाहरी स्तर को अभिव्यक्त करते हैं; जबकि आक्रोश प्राथमिक रूप में व्यक्ति सापेक्ष होता है किन्तु समष्टिगत होता जाता है। इसमें अकेलापन, व्यक्ति जीवन का असंतोष, पीड़ा, संत्रास, आत्महत्या, हिंसा आदि वैयक्तिक वृत्तियों में समाहित रहती हैं।

पौराणिक चरित्र

''पौराणिक चरित्र निरे ऐतिहासिक नहीं होते। उनके ऊपर जो प्रतीकत्व आरोपित हो जाता है, वह वास्तव में एक जाति के गहनतम विश्वासों, आदर्शों या कामनाओं का प्रतिरूप होता है। राम और कृष्ण, सीता और राधा, मंदोदरी, रावण और हनुमान आदि ऐसे ही प्रतीक चरित्र हंै, जिनके माध्यम से भारतीय जाति अपनी मूल प्रतिभा को मूर्तरूप देती है। गोकुल का नटखट ग्वाल बालक और महाभारत का परम कूटनीतिक जिस कृष्ण में ये दोनों रूप समन्वित होते हैं, वह केवल राधा

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

का प्रेयस या वैष्णव सम्प्रदाय का उपास्य नहीं है, बल्कि समूची भारतीय प्रतिभा का श्लाका-पुरूष हैं।''1

'कनुप्रिया' में धर्मवीर भारती ने कृष्ण के पौराणिक चरित्र के माध्यम से समकालीन विसंगति को भी विराट रूप में देखने का प्रयास किया है। ऐसा प्रयास नया नहीं है। पुरानी कहानी को निरन्तर नया सन्दर्भ देकर पुनर्सृजित करते हुए कवि-प्रतिभा सफल होती है। इसमें भारती ने कृष्ण के महान और आतंककारी इतिहास-प्रवर्तक रूप का आभास कराकर राधा के आन्तरिक संकट को पाठक के सम्मुख लाने का प्रयत्न किया है। इतिहास-पुरूष का यह महाकाव्य रूप राधा की सहज कैशोर्यसुलभ आत्म-विभोरता से मेल नहीं खाता, फिर भी राधा का आग्रह है कि वह अपने प्रिय को इसी सहजता के स्तर पर समझेगी और ग्रहण करेगी। कवि ने यहाँ राधा के द्वारा कृष्ण के स्वरूप की अनन्यता और प्रेम के स्वरूप की विविधता का बड़ा ही सुन्दर वर्णन करने का प्रयत्न किया है।

'कनुप्रिया' अर्थात् राधा वैष्णव राधा के साथ-साथ आधुनिक रोमाटिक राधा और त्रिपुरसुन्दरी राधा भी है। कि यह भी कहा जा सकता है कि वह तीनों की कान्तमैत्री है। कनुप्रिया में राधा का जो व्यक्तित्व प्रतिफलित हुआ है; उसमें मध्यकालीन वातावरण की ही अनुगूँज अधिक सुनाई देती है। राधा रीतिकालीन और भक्तिकालीन सन्दर्भों में ही अपनी स्थिति बनाये हुए है। राधा का भयाकूल व्यक्तित्व, प्रणयाकांक्षा, मिलनोत्सुकता, विरह-वेदना और तन्मयता की स्थिति सभी कुछ वैष्णव और रीति कविता के धरातल पर चित्रित किया गया है। कहीं भी आधुनिक बोध मुखरित नहीं है।

राधा-कृष्ण तथा राम-सीता आदि ऐसे प्रतीक चरित्र हैं; जिनके माध्यम से भारतीय जाति अपनी मूल प्रतिभा को मूर्त रूप देती आई है।

'कनुप्रिया' शक्ति के संचरण में निखिल पाराबार में परिव्याप्त होकर विराट, सीमाहीन, अदम्य तथा दुर्दान्त हो उठती हैं और फिर कान्हा के चाहने पर भी अकस्मात सिमट कर सीमा में बंध जाती है। यद्यपि राधा की यह स्थिति उसे पौराणिक संदर्भ के निकट ले आती है, किन्तु इस स्थिति को जो परिणति प्राप्त हुई है; वह नये बोध को प्रेरित करती है। मानों कृष्ण की इच्छा से ही राधा थोडे से जीवन में जन्म जन्मातरों की समस्त यात्राओं को दुहराने के लिए तत्पर होती है।

धर्मवीर भारती के प्रायः सभी मिथक-आधारित, काव्य चरित्र प्रधान हैं। उनमें भी प्रबन्धात्मक तत्वों से युक्त 'अंधायुग' एवं 'कनुप्रिया' में अनेक प्रमुख एवं गौंण पात्र युग-बोध की अभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से यहाँ उन्हें निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा रहा हैः-

स्त्री पात्र

राधा (कनुप्रिया) गांधारी (अंधायुग) और बृहन्नला ।

स्त्री पात्र

राधा

'कनुप्रिया' का नामकरण 'कनुप्रिया' अर्थात् राधा के नाम पर हुआ है। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण रचना राधा के चरित्र पर आधृत है।

'कनुप्रिया' की राधा वैष्णव राधा, आधुनिक रोमाण्टिक राधा और त्रिपुर सुन्दरी राधा तीनों का स्वमन्वित रूप है। राधा की मनः बुद्धि एक वयः संधि के आस-पास भी निश्चल स्निग्ध किशोरी की जैसी जान पड़ती है। उसकी मृदु-कोमल

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

प्रतिक्रियाओं में आकर्षण, स्वच्छन्दता और मासूमियत है । कुछ स्थलोंं पर वह कृष्ण उसको भी इसी साँचे में ढालकर देखती है। आगे जाकर वह मानवीय धरातल त्याग अलौकिक शक्ति की प्रतीक बन जाती है, और कृष्ण एक सामान्य प्रेमी मनुष्य से आलौकिक शक्ति।

लेखक का अभीष्ट राधा को केवल रोमाण्टिक सुन्दरी रूप में चित्रित करना नहीं है। उनके अन्तस में कहीं वैष्णव चिन्तन भी प्रभावी है, 'कनुप्रिया' की राधा प्रत्येक क्षण को जी लेना चाहती है। प्रत्येक कण से उसका तादात्म्यीकरण हो चुका है। स्थिति में वह कृष्ण के पास से लौट आती है। कभी चरम साक्षात्कार के क्षणों में पूर्णतः जड़ और निस्पन्द प्रतीत होती है।

कृति के अन्तिम चरणों में राधा को तन्मयता के गहरे क्षण रंग हुए अर्थहीन शब्द प्रतीत होते है। फिर भला कृत राधा को सार्थकता से किस प्रकार परिचित करा पायेंगे।

राधा तन्मयता के गहरे क्षणों राधा का सरल मन जटिल बुद्धि और यथार्थ की विषमताओं को झेल नहीं पाता । वह एक आधुनिक अस्तित्ववादी दार्शनिक की भांंति इतिहास का निषेध करती है। मूलतः राधा को इतिहास के जटिल क्षणों की अपेक्षा तन्मयता के क्षण भावविहव्लता प्रदान करते हैं। इतिहास उसके लिए 'बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डुबे हुए चाँद, रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण सा' (कनुप्रिया, पृ.61) प्रतीत होता है। समग्र कृति राधा के तन्मयता के क्षणों का महत्व प्रतिपादित करती है। राधा और कृष्ण में पारस्परिक अभेदता काव्य का प्राण है।

ओ मेरे कृष्ण तुम्हारे सम्पूर्ण अस्तित्व का अर्थ है।
मात्र तुम्हारी सृष्टि
तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थ है।

भक्ति और रीतिकालीन कवियों ने राधा को कृष्ण की प्रेरक शक्ति और कृष्ण की सृजन संगिनी के रूप में चित्रित किया है। वहाँ राधा को एक भोले चरित्र के रूप में उभारा गया है। इसके विपरीत 'कनुप्रिया' की राधा तन्मयता की स्थितियों में अपने प्रेमिल क्षणों का पुनरावलोकन करती हुई कृष्ण को रागात्मक संम्बधों का वास्ता देती है। वह अस्तित्व की सार्थकता प्रेम में मानती है, युद्ध में नहीं। युद्ध विघटन का प्रतीक हैं; जबकि जीवन एक सामंजस्य की अपेक्षा रखता है तथा समग्रता मे विलय की माँग करता हैः "जन्म जन्मान्तरों की पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर खड़ी होकर। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। कि इस बार इतिहास बनाते समय तुम अकेले न छूट जाओ।"2

राधा कृष्ण की पूरक बनना चाहती है। इतिहास निर्मिति के अंतिम क्षणों में कृष्ण ने जिस अभाव का अनुभव किया है; राधा उसकी पूर्ति करना चाहती है। जीवन का रागात्मक सम्बंध सूत्र ही था; जिसकी कृष्ण उपेक्षा कर गए। यहाँ आकर राधा प्रेम के लिए पाप-पुण्य, न्याय-दण्ड आदि किसी भी व्यवस्था को स्वीकार न करते हुए एक आत्मबद्ध चरित्र के रूप में सिमट जाती है। राधा के मन में स्थित प्रेम उसके समाज-सम्मत द्वन्द्व को ही रूपायित करता है। राधा प्रिय के बिछोह का उत्तरदायित्य इतिहास पर आरोपित करते हुए वह इसे इतिहास का क्रूरर चक्र मानती है; जो उसके प्रेमी को उसकी बाहों से छीनकर ले गया है। राधा की उदारता यह है कि वह अब भी उस प्रेम के प्रति निष्ठावान है। इसे हम उसके समर्पण और संलग्नता की पराकाष्ठा मान सकते हैं।

भारती द्वारा सृजित यह राधा एक गतिशील पात्र है। मानसिक असंतुलन और विक्षिप्त अवस्था में उसके तर्क; विशेष कर 'सृष्टि संकल्प' और

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

'इतिहास खंड' की फैंटेसी के रूप वर्तमान को समझने के लिए विविध संकेत देते हैं। सीमित परिवेश में भी राधा ने अपने अंतद्वन्द्व की अभिव्यक्ति करते हुए युद्ध और प्रेम की जो व्याख्या प्रस्तुत की है; वह उसे एक जीवंत अर्थवत्ता प्रदान करते हुए राधा को भी गूढ़ चिंतक के रूप में सामने लाती है। इस प्रकार 'कनुप्रिया' में भारती ने राधा के मिथक का सामाजीकरण किया है।

राधा का प्रश्न है कि वह स्वयं ही क्यों प्रश्न बनी रही; जबकि उसका 'कनु' पारिजात पुष्पों से सत्यभामा की माँग सजाता रहा और इतिहास को चुनौती देता रहा कृष्ण-प्रेम की निशानी बाँसुरी रागात्मकता की प्रतीक के रूप में राधा के पास कृष्ण की धरोहर बनकर ही नहीं रही; वरन राधा की अपनी होकर रह गयी । मूलतः भी वह राधा की ही थी। कृष्ण का उसका पर कोई नैतिक अधिकार भी नहीं था। यह बाँसुरी ही इस कविता का प्रबल भावना पक्ष है; जो जीवन में चेतना संचरण करने वाला तत्व रूप है। कवि कृष्ण की छाया रूप में कनुप्रिया का अर्थ विस्तार और विकास ही करता है जहाँ वह कृष्ण की एक सहयोगिनी के रूप में उभर कर सामने आती है।

भावुकता से अभिशप्त कला भी जब पुकार उठती है, तब अपनी पूर्णता पर प्रेम के ऐसे ही आरोप किया करती है, मानो शब्द की मानव-परिवर्तन के महान कितनी मधुराई से एक युग से दूसरे युग में पंहुचाते रहते हैं। साँसें मानों अपनी ही गति से नहीं जाती; वे किसी युग के मोल पर जीती है। वे मानो पुरूषार्थ की भूख को समर्पण से पूर्ण किया करती हैः

बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत डुबे हुए चाँद
रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण सा, मेरा ये जिस्म।

'कनुप्रिया' में भागवत तथा महाभारत, दोनों को ही 'सहज की कसौटी' पर कसा गया है। यह कसौटी 'अस्तित्व के अर्थ' की हैं और इसका बिन्दु है 'क्षण'।

इसका परिणाम त्रासदी न होकर एक त्रासद वेदना है और यह त्रासद वेदना त्रासद शांति की दशा के बजाय आधुनिक त्रासदी के (परिणाम अर्थात्) फूहड़पन की दशा में अन्वित हुई है यही इसकी सिद्ध-रति से अस्तित्व वादी क्षण-भोग की यात्रा है।

अतः 'कनुप्रिया' में पुराण का महाभाव आधुनिक त्रासद-बोध से मंडित हुआ है। जिसका विचार बिन्दु है, क्षण। अतः वह वैष्णव राधा को आधुनिक राधा, त्रिपुरसंुदरी राधा और दार्शनिक राधा तीनों ही एक संग बनाता हैं वैष्णव राधा की है जो कृष्ण की शक्ति है ''तुम मेरे कौन हो।''3

रहस्यमयी लीला की एकांत संगिनी राधा (भक्ति क्षण के वजाय) चरणमुख के क्षणांे का अनुभव करती है। वह शबरण की शबरी साधिका की तरह पोई की जंगली लतरों के पके फलों को तोड़कर-मसलकर उनकी लाली से अपने पांवों के महावर लगवाती है। कनु की गोद में धनुषमुद्रा में आसीन हो जाती है और इस महामुद्रा में निश्चल बैठ जाती है। 'जब मैं प्रगाढ़ राधा वासना उद्दाम-क्रीड़ा, और गहरे प्यार के बाद थक कर तुम्हारी (कनु की) चन्दन-बाँहों में अचेत बेसुध सो जाती हूँ।'

'कनुप्रिया' का आधार भागवत है। यहाँ उसके कृष्ण का जो रूप चित्रित है, वह भागवत में वर्णित कृष्ण के लीला रूप के साथ महाभारतीय कृष्ण के राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ और व्याख्याकारक व्यक्तित्व को भी रूपायित करता है। राधा रागात्मक सेतु पर खड़ी है और इतिहास

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

के जीवन क्षणों में कृष्ण के साथ रहना चाहती है।

बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता
तुम्हारे इतिहास का/शब्द, शब्द, शब्द/ राधा
के बिना /सब रक्त के प्यासे/ अर्थहीन शब्द/

महासुख के इन क्षणों में राधा ने अकसर आकाश गंगा के सुनसान (शून्य) किनारों पर खड़े अथाह शून्य में अनन्त प्रदीप्त सूर्यो को देखा है। वज्र की चट्टानों को घायल फूलों की तरह बिखरते देखा है (पृ050) और चन्द्रमा उसके माथे का सौभाग्य बिन्दु बन गया हैं इस भाँति सूर्य, चन्द्र, नौ लाख तारे , शून्य, लय-प्रलय आदि बडे मर्म-भरे संकेत करते है।

राधा का प्रेम दिव्य है, उसका कारण यह है कि वह लौकिक है। यही भारती की नयी उपलब्धि भी है। उसकी राधा आध्यात्मिक प्रेम की प्रतीक नहीं है। वह मानवोचित विरागों और रागों से युक्त एक प्रेमिका है; जिसमें मानव-जीवन की समस्त भावनाओं अनुभूतियों का संगठन उपस्थित किया गया है।

धर्मवीर भारती के मिथकीय काव्यों की चरित्र सृष्टि में 'कनुप्रिया' का चरित्र श्रीमद्भागवत और महाभारत दोनों के कथा प्रसंगों से लिया गया है। 'कनुप्रिया' परम्परा से हटकर नये स्वरूप का प्रबंध काव्य है, जिसमें कृष्ण का स्मृति मूलक विशेष शैली में प्रस्तुत किया गया है। 'कनुप्रिया' की मूल संवेदना प्रेम है, किन्तु इस संवेदना को उसकी गहराइयों में उभारते हुए भी कवि उसे मूल्यों से असम्पृक्त नहीं कर सका है।

''कनुप्रिया' में इस बल पर नहीं दिया गया है कि कृष्ण औपनिषदिक शिक्षा के अनन्य उपदेष्टा थे, और न विभिन्न अवतारों के बीच एक मात्र पूर्णावतार; वे 'देवकी नन्दन' कृष्ण थे, अंगिरस ऋषि के शिष्य कृष्ण थे अथवा आर्येत्तर 'असुर कृष्ण थे; इसमें कनु की प्रिया स्निग्धा राधा की कोई रूचि नहीं है। वह स्वयं भी न तो दीक्षिता कन्यका थी, न दीक्षिता अंगना थी और न उसका रूझान कृष्ण के व्यूह और व्यूहान्तर की ओर उन्मुख था। इतना ही कि उसकी नित्य पुष्टा श्रद्धान्विता आराधना कृष्णार्पिता हैं।''4

भारती ने इतिहास, पुराण और आधुनिक जीवन दृष्टि के पार्थक्य को अच्छी तरह समझा है, इसलिए कनुप्रिया में उन्होंने अपने कवि को इतिहासकार या पुराणकार होने से बचाया और कृष्ण को राधा की दृष्टि से देखते हुए कर्म, ज्ञान, भक्ति और माधुर्य की समन्वित पृष्ठभूमि में; प्रधानतः एक प्रेमी के रूप में ही चित्रित किया है, किन्तु कृष्ण का यह प्रेमी रूप रीतिकाव्य के नायक से सर्वथा भिन्न है। राधा के नाभि कमल की गंध के प्रति उसका ही खिंचाव है। दूसरी बात यह कि भारती ने कृष्ण के रस रूपात्मक पक्ष के साथ उनका जो चतुर्व्यूहात्मक रूप उपस्थित किया है, उसका लक्ष्य प्राचीनों द्वारा मान्य 'धर्म-संस्थापन' या भू-भारहरण नहीं, बल्कि इतिहास का नूत और सार्थक निर्माण है।

'कनुप्रिया' में राधा के मर्म और धर्म दोनों का निरूपण है, केवल वियोग-विधुरा राधा या भगवद्नुरक्ति में लीन राधा या प्रियसंग -तृषा में तड़पती हुई राधा की अनरून्तु वेदना का गायन नहीं। अतः 'कनुप्रिया' की राधा में कर्तव्य-भावना के साथ ही आभ्यन्तरिक रमणीयता है।

'कनुप्रिया' में राधा के इतिहास- पक्ष से अधिक उसके तत्व-पक्ष पर ध्यान दिया गया है, किन्तु यह तत्व-पक्ष, गौड़ीय वैष्णव कविता की आध्यात्मिकता से आक्रान्त नहीं है और न गौड़ीय रस-निर्वाह- प्रणाली या रसक्रम के विभिन्न प्रसंगों की वर्णनात्मकता से ग्रस्त है। इसलिए 'कनुप्रिया' में वेणु-माधुर्य, रूप-माधुर्य,

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

चेष्टा- माधुर्य, इत्यादि का पारम्परिक वर्णन-विस्तार नहीं मिलता है और न ऐश्वर्य-ज्ञान विनिर्मुक्ता भक्ति का विश्लेषण। वैचारिक दृष्टि से कनुप्रिया की राधा इतनी प्रौढ़ है। उसके सम्मुख कृष्ण-चरित्र गौंण प्रतीत होता है। उसे यह भी मालूम है कि इस लीला तन के अलावा उसका एक छाया तन है जो किसी आदिम भय से सतत ग्रस्त रहा करता है। 'कनुप्रिया' में राधा के मन का विश्लेषण अधिक हुआ है, इसलिए इसमें कृष्ण-पक्ष कम है। केवल राधा ही राधा है। यद्यपि कृष्ण कभी खुलकर पाठकों के सामने नहीं आते तथापि कृष्ण भाव या भागवत के लीलावतारी कृष्ण का अरूपीकरण काव्य के पूरे वातावरण में अदृश्य सुगंध की तरह समाया हुआ है।

'कनुप्रिया' की राधा में निम्बार्क सम्प्रदाय की राधा के दार्शनिक रूप की झलक कहीं-कहीं पर विद्यमान है। भारती ने बल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायियों की तरह राधा की परकीया रूप में अंकित करने की चेष्टा नहीं की है। बल्कि गौड़ीय वैष्णव मतावलम्बियों द्वारा मान्य राधा के परकीया-भाव में ही राधा के उत्कृष्ट रूप को उद्घाटित करने की चेष्टा की है। 'कनुप्रिया' की राधा 'अनूढ़ा' परकीया के रूप में गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के परकीया-भाव के अधिक निकट है। जो लीला के माध्यम से भगवत-स्वरूप दिव्य रस को प्राकृत रस बना देता है।

'कनुप्रिया' भारती की एक काव्य-कृति है, जिसमें पुरानी कथा के माध्यम से नये कथ्य को या कहने के आशय से पौराणिक सन्दर्भ में नयी संवेदना को अभिव्यक्त किया गया है। राधा-कृष्ण का प्रणय-प्रसंग भारतीय साहित्य के लिए बहुत ही पुराना और परम्परित है; किन्तु 'कनुप्रिया' में परम्पर उत्कृष्ट नहीं है।

'कनुप्रिया' का फलक सार्वकालिक और शाश्वत है। 'कनु' और उनकी 'प्रिया' दोनों ही पुरूष और नारी के अन्तःकरण में व्याप्त नन्दन तत्व के प्रतीक है और वे अपनी परिणति में मानवीय अस्मिता को अर्थान्तरित करते हुए जीवन का अभिनन्दन करते प्रतीत होते हैं। विषयगत स्तर पर 'कनुप्रिया' प्रीतित्व की एक करुण- मधुर काव्यमयी आख्यायित है।

राधा और कृष्ण की जोड़ी को रोमांस का उदास और आदर्श प्रतीक माना जाता है। कहना न होगा कि भावनात्मक स्तर पर यदि हर पुरूष में कृष्ण-तत्व है तो हर नारी में एक राधा छिपी बैठी साख्य-दर्शन के 'प्रकृति और पुरुष' भी दार्शनिक स्तर पर नारी-पुरुष की इस सनातन लीला का ही प्रतिपादन करते हैं और प्रकारान्तर में यही 'अर्द्धनारीश्वर' की परिकल्पना है। 'पुरुष' यही सत्य है तो 'नारी' सुन्दर है और इन दोनों का सायुज्य ही 'शिव' है। भारती ने 'कनुप्रिया' में नारी-पुरुष के शाश्वत आकर्षण को रेखांकित किया है।

प्रारम्भ में कृष्ण एक विभूत पथ पर खड़े छायादार अशोक वृक्ष को राधा ने सम्बोधित करते हुए कहा कि वह उसे पुष्प मुकुलित करने की प्रक्रिया में अनन्त वार धूल में मिली है और उसके कठोर तने के रेशों में कली, कोंपल, सौरभ और लाली बनकर चुपके से सो गयी है। उसके जिस्म के सितार से झंकृत होते स्वर्णिम संगीत में कृष्ण का ही निवास है। कृष्ण ने उसकी निवेदित प्रणाम मुद्राओं को अग्नि भंगिमाओं और गति को स्वयं में बाँंध लिया है। यमुना की नील श्यामल जल लहरियों में राधा का काँंपती वेतसलता-सा तन बिम्ब मानों कृष्ण के प्रगाढ़ बाहुपाश में बंधकर एक ऐसी पूर्णता प्राप्त कर लेता है। जो उसके मन में और अतृप्ति और

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अपूर्णता को जगा देता है राधा और कृष्ण का प्रथम परिचय धीरे-धीरे नित्य मिलन के चिव्दिलास ने बदल जाता है। एक दिन खेल-ही-खेल में कृष्ण-राधा की कुमारी पगडण्डी-सी उजली मांँग को आम्रमंजरियों से भर देते हैं और तभी से राधा स्वयं को उनकी परिणीता मान लेती है। इस नित्य के मिलन पर्व में राधा का मन किसी 'अज्ञात भय' 'अपरिचित संशय', 'आग्रह भरे गोपन' और 'निव्याख्या उदासी' से भीत और शंकित होते हुए भी एक अनिर्वचनीय आह्लाद से काँप-काँप उठता है। मिलन के चरम एकान्त क्षणों मे कृष्ण राधा को प्रायः यही समझाते हैं, कि तुम्हारे अधर, तुम्हारी पलकें, तुम्हारी बांहे, तुम्हारे चरण, ''तुम्हारे अंग-प्रत्यंग, तुम्हारी सारी चम्पकवर्णी देह, मात्र पगडण्डियाँ हैं जो चरम साक्षात्कार के क्षणों में रहती नहीं रीत-रीत जाती हैं।''5

राधा के लिए कृष्ण का व्यक्तित्व एक ऐसा नीला महासमुद्र है। जिसमें उसने स्वयं को एक नदी की भाँति निमग्न कर लिया है।

लाज से धनुष की तरह दुहरी हुई राधा शोख और विचुम्बित पलकों, पतले मृणाल-सी गोरी अनावृत बांहोवाली राधा के लिए कृष्ण 'रक्षक' है 'बंधु' है और 'सहोदर' भी और राधा कनु की शक्ति है, योगमाया है, निखिल धारावय में व्याप्त है, दिग्वधू है और अन्तकाल से अनन्त दिशाओं में सह चारिणी है। कृष्ण की सम्पूर्ण इच्छाओं का अर्थ है राधा।

गांधारी

गांधारी 'अंधायुग' के प्रथम अंक से ही नाटक में उपस्थित रहती है। प्रारम्भ में ही वह शीश झुकाये बैठी हुई अट्ठारहवें दिन के युद्ध का इन्तजार करती दिखाई देती है। धृतराष्ट्र युद्ध के परिणाम के विषय में विदुर और गांधारी से वार्तालाप कर रहे हैं।

गांधारी 'अंधायुग' की प्रासंगिक कथा के केन्द्र में है। महाभारत का एक प्रमुख नारी चरित्र गांधारी, 'अंधायुग' में भारतीय नारी के त्याग और पतिवृत्य की सजीव मूर्ति के रूप में प्रस्तुत हुई है। भारती ने गांधारी को नए सर्जनात्मक कलेवर से मण्डित करके चित्रित किया है। वह पुत्र स्नेह और मोहान्धता में कठोर हो जाती है तथा पुत्र वियोग के उपरान्त अश्वत्थामा की विक्षिप्तावस्था देखकर व्याकुल हो जाती है। दुर्योधन के कंकाल को देखकर कह उठती है-''मैंने प्रसव नहीं किया था कंकाल वह।''6 और हृदय विदारक स्वर में चीत्कार उठती है। वह धर्म, नीति, मर्यादा एवं मानवता के प्रति आस्थावान होते हुए भी इन घटनाओं का उत्तरादायित्व कृष्ण पर डालती है और मूल्यांे को एक आडम्बर की संज्ञा देती हैं। गांधारी अपने पुत्रों के मोह में आबद्ध है और अपने पुत्रों के खिलाफ एक भी शब्द सुनना नहीं चाहती है। इस अंधे युग की अंधी प्रजा की ओर से वह अपनी आँखांे में पट्टी बाँधना उचित समझती है। दुर्योधन से वह कहती हैः

''धर्म जिधर होगा ओ मूर्ख!
उधर जय होगी।
धर्म किसी ओर नहीं था। लेकिन!
सब ही थे अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित
जिसको तुम कहते हो प्रभु; उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया। वंचक है।''7

वह अपने पुत्र से धर्म की बात करती है, लेकिन दुर्योधन के शव को देखकर वह व्याकुल हो जाती है तथा अन्त में पुत्र मोह के कारण ही कृष्ण को शाप देती है कि तुम्हारी भी व्याध के हाथ से मृत्यु होगी।

अश्वत्थामा की कुरूपता और पीप से सना तथा कोढ़ से ग्रस्त रूप देखकर गांधारी का हृदय इस

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

तरह विदीर्ण हो जाता है कि प्रभु को शाप देने में भी नहीं हिचकती हैः

"कृष्ण सुनो
तुम यदि चाहते तो रूक सकता था युद्ध यह
मैंने प्रसव नहीं किया था कंकाल वह
इंगित था तुमने ही भीम ने अधर्म किया
क्यों नहीं तुमने वह शाप दिया भीम को
जो तुमने किया है प्रभुता का दुरूपयोग
यदि मेरी सेवा में बल है
संचित तप में धर्म है
तो सुनो कृष्ण!
प्रभु हो या परात्पर हो
कुछ भी हो सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक-दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा
तुम खुद उनका विनाश करके
कई वर्षों बाद किसी घने जंगल में
साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे।"8

पुत्र वियोग में व्याकुल गांधारी अपने पुत्र-युयुत्सु को भी माफ नहीं कर पाती है। उसके अन्दर इतनी कटुता भर गई है कि वह अश्वत्थामा के हाथों धृष्टद्युम्न के वध को देखने को आतुर है; वह भी बिना पट्टी के।

"और जब पुत्र वह पराक्रमी यशस्वी है।
संजय चलो
यहीं रहने दो युयुत्सु को
पुत्र कहीं छिप जाओ
प्राण बचाओ
अब तुम्हीं हो आश्रय
अपने अंधे पिता, वृद्ध माता के घर।"9

उसका चरित्र विलक्षण है। वह पुत्र-वियोगी, पतिव्रता, सतीत्व की मूर्ति होने के साथ-साथ कटु-तीक्षण व्यवहार करने वाली भी है। पति के जन्मांध होने के कारण पतिव्रता धर्म निभाते हुए आंखों पर सदा के लिए पट्टी बांध लेने वाली सत्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ठ और त्यागमयी गांधारी यहाँ मोहान्ध तथा सर्वथा संकुचित दृष्टि वाली दिखाई देती है। वस्तुतः 'अंधायुग' की गांधारी अंधी राष्ट्रीयता की प्रतीक है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. पुष्पा भारती, धर्मवीर भारती की साहित्य साधना, भारतीय ज्ञानपीठ 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, 2006, पृ0 369

2.डॉ.धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, भारतीय ज्ञानपीठ 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, 2008 पृ0 79

3. वही, पृ0 38

4. पुष्पा भारती, धर्मवीर भारती की साहित्य साधना, भारतीय ज्ञानपीठ 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, 2006 पृ0 375

5. डा. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, भारतीय ज्ञानपीठ 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, 2008 पृ0 59

6. डा. धर्मवीर भारती, अंधायुग, किताबमहल, 22-ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद-1, पृ0 26

7. वही, पृ. 13

8. वही, पृ. 81

9. वही, पृ. 72